तीन गुप्ति

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जिससे संसार के कारणों से आत्मा का गोपन अर्थात् आत्मा की रक्षा होती है, वह गुप्ति है। गुप्ति का शाब्दिक अर्थ है रक्षा। मन, वचन, काया के साथ जब गुप्ति का योग होता है, तब उसका अर्थ है मन, वचन, और काय की अकुशल प्रवृत्तियों से रक्षा और कुशल प्रवृत्तियों में संयोजन। सहज शुद्ध आत्म भावना रूप गुप्त स्थान में संसार के कारणभूत रागादि के भय से आत्मा को छिपाना, प्रच्छादन या रक्षण करना गुप्ति है। मन, वचन, काय को सावद्य क्रियाओं से रोकना गुप्ति है। साधु को लोकपूजा आदि लौकिक विषयों की इच्छा न करके रत्नत्रय–स्वरूप आत्मा को रत्नत्रय के प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्र से बचाने के लिए पापयोगों का निग्रह करना चाहिए।

गुप्तियां तीन हैं– मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। गुप्तियां एकान्त निवृत्तिरुप ही नहीं, प्रवृत्तिरुप भी होती हैं। अतः प्रवृत्तिरूप अंश की अपेक्षा से उन्हें भी समिति कह दिया है। समिति में सत्क्रिया की मुख्यता है, जबकि गुप्ति में असत् क्रिया के निषेध की मुख्यता है।

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त हुए मन के व्यापार को रोकना मनोगुप्ति है। किसी को मारने की इच्छा करना संरम्भ है। मारने के साधनों पर विचार करना समारम्भ है और मारने की क्रिया को प्रारम्भ करने का विचार करना आरम्भ है। इन तीनों को रोकना आवश्यक है।

जो भाषा सत्या है, जो भाषा मृषा है, जो भाषा सत्या मृषा है, अथवा जो भाषा असत्यामृषा है, इन चारों भाषाओं में से जो मृषा–असत्या और मिश्रभाषा है, उसका व्यवहार साधु साध्वी के लिए सर्वथा वर्जित है। केवल सत्या और असत्याऽमृषा–व्यवहार भाषा का प्रयोग ही उसके लिए आचरणीय है। उसमें भी यदि सत्य भाषा सावद्य, अनर्थदण्डक्रियायुक्त, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, कठोर, कर्मों की आस्रवकारिणी तथा छेदनकारी, भेदनकारी, परितापकारिणी, उपद्रवकारिणी एवं

प्राणियों का विघात करने वाली हो तो विचारशील साधु को मन से विचार करके ऐसी सत्यभाषा का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

असत्य, कर्कश, अहितकारी, एवं हिंसाकारी भाषा का प्रयोग नहीं करना, स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा, आदि वचन की अशुभ प्रवृत्ति और असत्य वचन का परिहार करना वचनगुप्ति है। मनोगुप्ति और वचनगुप्ति में अन्तर यह है कि मनोगुप्ति में मन में चिन्तन रहता है, जबकि वचनगुप्ति में वचन से बोला जाता है। मन के चिन्तन को भाषा वर्गणा द्वारा प्रगट किया जाता है।

शारीरिक क्रिया को संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त न करना, उठने–बैठने, खड़े होने खड्डा, खाई आदि लांघने और इन्द्रियों के प्रयोग में संयम रखना, यतनापूर्वक सत् प्रवृत्त करना कायगुप्ति है। शरीर की चेष्टा की प्रवृत्ति नहीं होना अथवा कायोत्सर्ग करना कायगुप्ति है। हिंसादि कार्यों से निवृत्त होना कायगुप्ति है। कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर की अपवित्रता, असारता और आपत्ति में निमित्तपना जानकर उससे ममत्व न करना कायगुप्ति है। कायगुप्ति से जीव क्या प्राप्त करता है? कायगुप्ति से जीव संवर को प्राप्त करता है। संवर का अर्थ है अकुशल कायिक प्रवृत्ति से उत्पन्न आस्रव का निरोध। जब अकुशल प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है, तब हिंसादिपापास्रव निरूद्ध होने लगते हैं।

प्रवृत्ति का मुख्य आधार शरीर है। कायगुप्ति की साधना के लिए आत्मकेन्द्रित होना आवश्यक है। जब साधक को आत्मा के अस्तित्व का भान होने लगता है, तब उसकी शरीर के प्रति आसक्ति क्षीण होने लगती है। ममत्व, ममकार और अहंकार क्षीण होने से काय की चंचलता क्षीण होने लगती है। पांचसमितियाँ और तीन गुप्तियां ये आठ प्रवचन माताएँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सदैव रक्षा करती हैं। जैसे माता पुत्र का पालन करती है, वैसे ही ये रत्नत्रय की रक्षा करती हैं। इसीलिये इनका प्रवचनमातृका नाम सार्थक है। अष्टप्रवचन माता श्रमणाचार का आधार है। जो श्रमण इन प्रवचन माताओं का सम्यक् पालन करता है उसका आचार शुद्ध रहता है।

मन, वचन और काया की सम्यक् प्रवृत्ति इन्द्रिय निरोध के बिना नहीं हो सकती। अतः इन्द्रिय निरोध आवश्यक है। चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा और स्पर्श ये पांच इन्द्रियां हैं। इन्द्रियों को

अपने–अपने विषयों की प्रवृत्ति से रोकना इन्द्रिय निग्रह है। जिस प्रकार से उन्मार्गगामी घोड़ों को लगाम के द्वारा निग्रह किया जाता है वैसे ही तत्त्वज्ञान की भावना के द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों को विषयरूपी उन्मार्ग से हटाया जाता है। जो साधक विषयों से इन्द्रियों को विमुख नहीं करता, इन्द्रियां उसके तेज को नष्ट कर देती हैं। जिन जीवों की इन्द्रियां जीवित हैं, उनका दुःख औपाधिक नहीं है, स्वाभाविक है क्योंकि उनकी विषयों में रति देखी जाती है। जैसे, हाथी बनावटी हथिनी के शरीर को स्पर्श करने के लिए दौड़ता है और पकड़ लिया जाता है। इसी प्रकार मछली बडिश के मांस को चखने के लोभ से प्राण खो देती है। भ्रमर घ्राणेन्द्रिय के विषय से सताया हुआ संकुचित हुये कमल में गंध के लोभ से कैद होकर दुःखी होता है। पतंगा दीपक की ओर दौड़कर जल मरता है और हरिन श्रोतेन्द्रिय के विषयवश मधुरध्वनि के वशीभूत हो शिकारी के हाथों मारा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इन्द्रियां दुःखरूप ही हैं। तीन गुप्तियों से आत्मरक्षण होता है।